IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

काव्य की आत्मा

Vinay Kumar

Asst. Professor Hindi

Govt College Bhoranj (Tarkwari) Hamirpur, Himachal Pradesh

काव्य, कविता या पद्य, साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी कहानी या मनोभाव को कलात्मक रूप से किसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। श्रोता के हृदय में कवि का मनोभाव तभी आनंद उत्पन्न करता है जब कवि की भाषा कलात्मक हो। भाषा की कलात्मकता श्रोता के हृदय में आनंद उत्पन्न कर सके। इसी आनंद पर कविता की श्रेष्ठता निर्भर करती है। व्यक्ति वही सुनता है जो वह सुनना चाहता है। व्यक्ति का ध्यान वही वस्तु आकर्षित करती है, जो उसके काम की हो। वस्तु चाहे कितनी भी मूल्यवान हो, अगर व्यक्ति के काम की नहीं, तो वह उसे अनदेखा कर देता है। वाणिज्य की दुनिया में कहा जाता है कि जो दिखता है वह बिकता है। व्यापारी अपने माल को लोगों की नजर में लाना चाहता है। जब माल लोगों की नजर में आएगा तभी तो वे उसे पसंद या नापसंद करेंगे। श्रोता द्वारा कवि के मनोभावों या कविता में छुपी रमणीयता को तभी ग्रहण किया जाता है जब जब अभिव्यक्ति या शब्दों में चमत्कार हो। शब्दों के चमत्कार से ही मनोभाव श्रोता के हृदय को भाते हैं। काव्य की आत्मा क्या है? इस विषय पर ईसा पूर्व से ही भारतीय आचार्य चिंतन करते आ रहे हैं। आचार्य भरतमुनि के अनुसार रस, आचार्य भामह के अनुसार अलंकार, आचार्य वामन के अनुसार रीति, आचार्य कुंतक के अनुसार वक्रोक्ति, आचार्य आनंदवर्धन के अनुसार ध्वनि और आचार्य क्षेमेंद्र के अनुसार औचित्य काव्य की आत्मा है। निःसंदेह ये सभी काव्य के आवश्यक तत्व हैं। काव्य में इन सभी तत्वों की उपस्थिति वांछनीय है।लेकिन इनमें से कुछ तत्वों के न होने पर भी काव्य होता है। जिन तत्वों के न होने पर भी काव्य होता है, उन्हें हम काव्य की आत्मा नहीं मान सकते। काव्य की आत्मा हम उस तत्व को मान सकते हैं, जिसके न होने पर पद्य, गद्य बन कर रह जाए। काव्य के उस अनिवार्य तत्व की कविता में अनिवार्यता को तथ्यों के आधार पर परखा जा सकता है। इस तत्व के बिना क्या कविता की पंक्ति श्रोता के हृदय में आनंद नहीं उत्पन्न कर सकती? अगर वह तत्व कविता में है, तो कैसे श्रोता के हृदय में आनंद उत्पन्न करता है? क्या इस तत्व को काव्य की आत्मा कहा जा सकता है? काव्य के विषय में चाहे कोई सिद्धांत निश्चित न हो, परंतु उसकी रागात्मकता असंदिग्ध है। कविता मानव मन का शेष सृष्टि के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करती है। कविता में विद्यमान

जिस तत्व से मानव मन का शेष सृष्टि के साथ रागात्मक संबंध स्थापित होता है उसे हम काव्य की आत्मा कह सकते हैं। जहां कोई चित्रावृत्ति कवि हृदय की गहन रागात्मकता से जन्म लेती है, वहां उसका ध्वन्यात्मक रूप ग्रहण कर लेना स्वाभाविक है। लेकिन यह ध्वन्यात्मक रूप सहृदय के मन में भी रागात्मकता उत्पन्न कर सके, इसी बात में कविता की श्रेष्ठता और सफलता निर्भर करती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। हमारी भाषा ही हमें पशुओं से अलग करती है। भाषा से ही समाज और संस्कृति का जन्म होता है। अलग-अलग समाजों की अलग – अलग भाषा होती है। दूसरी भाषा में लिखी गई पंक्तियों का अर्थ भी हम कठिनाई से समझ सकते हैं। दूसरी भाषा में लिखी गई कविता हमारे मन में रागात्मकता नहीं उत्पन्न कर सकती। यह कवि द्वारा शब्दों का हेर-फेर होता है जो हमारे मन में रागात्मकता उत्पन्न करता है।शब्दों के इसी हेर – फेर में कविता की रमणीयता विद्यमान रहती है। अलंकार संप्रदाय, वक्रोक्ति संप्रदाय और ध्वनि संप्रदाय में कविता में शब्दों द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने पर बल दिया गया है। मनोभावों में जो रागात्मकता होती है, वह गद्य द्वारा भी प्रकट हो जाती है। जब गद्य द्वारा भी मनोभावों को रागात्मकता के साथ प्रकट किया जा सकता है तो कवि द्वारा कविता लिखने का औचित्य क्या है। कविता में वह क्या विलक्षणता है जो मनोभावों द्वारा उत्पन्न रागात्मकता को बढ़ा देती है। कविता की पंक्तियों को पढ़कर श्रोता आनंदविभोर हो उठता है। कविता की पंक्तियों में यह विलक्षणता अलंकारों के प्रयोग द्वारा आती है। अलंकार ही वह तत्व है जो पद्य को गद्य से अलग करता है। रस कोई निरपेक्ष वस्तु नहीं है। वह किसी विशेषयुग के जनमानस की नैतिक और रागात्मक धारणाओं से निर्मित होता है। उन धारणाओं पर आधारित कथा में रससिद्ध हुआ रहता है। यही रससिद्ध का अर्थ है। साहित्य जनमानस की सिंचित प्रवृत्तियों का दर्पण होता है। किसी भी कृति की समालोचना उसके रचना के समय को ध्यान में रखकर ही की जानी चाहिए। जो वस्तु आज आभिजात्य की प्रतीक है, वह अतीत में ग्रामीणता की प्रतीक हो सकती है। आज पुरुषों और स्त्रियों द्वारा नाचना और गाना आभिजात्य का प्रतीक है। लेकिन अतीत में भारतीय समाज में इसे निम्न कर्म माना जाता था। आभिजात्य वर्ग की स्त्रियां लोगों के सामने नाच नहीं है सकती थी।स्वतंत्रता संघर्ष के समय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और रामधारी सिंह दिनकर की कविताएं युवाओं को जोश से भर देती थी। उस समय युवाओं में अंग्रेजी राज के प्रति आक्रोश था। ये कविताएँ आज के युवाओं में आक्रोश नहीं जगा सकती। अंग्रेजी बोलना आज आभिजात्य वर्ग की पहचान है। व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है। व्यक्ति की सार्थकता समाज में घुलमिल कर रहने में है। व्यक्ति समाज द्वारा अपनी स्वीकृति चाहता है। जहां इंग्लैंड का युवा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ाई करना चाहता है। वहीं अफगानिस्तान का युवा तालिबान में शामिल होना चाहता है। इंग्लैंड और अफगानिस्तान का युवा, दोनों ही अपने- अपने समाजों द्वारा अपनी स्वीकृति चाहते हैं। जहां इंग्लैंड में आक्सफर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ना सम्मान की बात है, वहीं अफगानिस्तान में तालिबान में शामिल होना सम्मान की बात है। भट्टनायक का साधारणीकरण का सिद्धांत ही रस सिद्धांत की सही तरीके से व्याख्या करता है। काव्य द्वारा रस केवल सहृदय के मन में जागते हैं। कुछ लोग सिनेमा हॉल में तीन घंटे सिर्फ पॉपकॉर्न खाने जाते हैं। फिल्म को देखकर उनके मन में न करुण रस, न ही वीर रस जागता है। रस उत्पत्ति के लिए सबसे बड़ी शर्त श्रोता का सहृदय होना है। अगर श्रोता सहृदय है तभी उसके मन में रस जागते हैं। कुछ श्रोता तो मानसिक रूप से बीमार होते हैं। बलात्कार जैसी घटनाओं को देखकर उनके मन में घृणा की जगह श्रृंगार रस जाग उठता है।

ये मानसिक रोगी भी समाज का हिस्सा होते हैं। इसलिए काव्य की सफलता का अध्ययन करने के लिए केवल सहृदयों को शामिल करना चाहिए। सहृदय एक पढ़ा लिखा व्यक्ति होता है जो समाज का अभिन्न हिस्सा होता है। वह संस्कृति को आत्मसात किए होता है। वह समाज के सुख – दुःख में बराबर का भागीदार होता है। सहृदय ही समाज की रीति और नियमों को समझ सकता है। जब सहृदय ही काव्य के मर्म को समझ सकता है तो कवि का सहृदय होना भी अनिवार्य है। पश्चिमी काव्यशास्त्र में टी. एस. इलियट ने निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत का प्रतिपादन रोमैंटिक कवियों की व्यक्तिवादिता के विरोध में हुआ। इलियट, एजरा पाउंड के विचारों से काफी प्रभावित थे। एजरा पाउंड की मान्यता थी कि कवि वैज्ञानिक के समान ही निर्वैयक्तिक और वस्तुनिष्ठ होता है।कवि का कार्य आत्मनिरपेक्ष होता है। इस मत से प्रभावित इलियट अनेकता में एकता बांधने के लिए परंपरा को आवश्यक मानते थे, जो वैयक्तिकता का विरोधी है। वह साहित्य के जीवंत विकास के लिए परंपरा का योग स्वीकार करते थे, जिसके कारण साहित्य में आत्मनिष्ठ तत्व नियंत्रित हो जाता है और वस्तुनिष्ठ प्रमुख हो जाता है। इलियट ने निर्वैयक्तिकता का अर्थ कवि के व्यक्तिगत भावों की विशिष्टता का सामान्यीकरण बताया है। उनके अनुसार कवि अपनी तीव्र संवेदना और ग्रहण क्षमता से अन्य लोगों की आयत्त कर लेता है, पर वे आयत्त अनुभूतियाँ उसकी निजी अनुभूतियाँ हो जाती हैं। जब वह अपने स्वयुक्त अथवा चिंतन द्वारा आयत्त अनुभवों को काव्य में व्यक्त करता है तो वे उसके निजी अनुभव होते हुए भी सबके अनुभव बन जाते हैं। कविता के घटक – तत्व, विचार, अनुभूति, अनुभव, बिंब, प्रतीक आदि सब व्यक्ति के निजी या वैयक्तिक होते हैं। कलाकार जब अपनी तीव्र संवेदना और ग्रहण शक्ति के माध्यम से अपने अनुभवों को काव्य रूप में प्रकट करता है, तो वे व्यक्तिगत होते हुए भी सबके लिए अर्थात् सामान्य (सर्वजन्य) बन जाते हैं। जहां टी. एस. इलियट का निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत बीसवीं सदी में सामने आया, वहीं संस्कृत आचार्य अभिनवगुप्त अभिव्यक्ति का सिद्धांत सैंकडों वर्ष पूर्व प्रस्तुत कर चुके थे। अभिनवगुप्त ने अपनी मान्यता स्थायीभाव की स्थिति पर केंद्रित रख कर प्रस्तुत की। उनका कथन है कि राग-द्वेष की भावना को मनुष्य जन्म से ही लेकर पैदा होते हैं। समय – समय पर हम परिस्थिति के अनुकूल भावों का अनुभव करते हैं। ये सभी संस्कार रूप में मनुष्य के हृदय में सोते रहते हैं। इनसे रहित कोई प्राणी नहीं होता, हां इनकी प्रबलता में अंतर हो सकता है, यथा कवि में इनकी अनुभूति अन्य की अपेक्षा अधिक होती है।इन्होंने व्यंजना शक्ति के आधार पर रस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा कि 'विभावादि' और स्थायी भावों में परस्पर व्यंजक-व्यंग्य रूप संयोग द्वारा रस की अभिव्यक्ति होती है। अर्थात् विभावादि व्यंजकों के द्वारा स्थायीभाव ही साधारणीकृत रूप में व्यंग्य होकर श्रृंगार आदि रसों में अभिव्यक्त होते हैं और यही कारण है कि जब तक विभावादि की अवस्थिति बनी रहती है रसाभिव्यक्ति भी तब तक होती रहती है, इसके उपरांत नहीं। अभिनवगुप्त रस निष्पत्ति से आशय 'रसाभिव्यक्त' लेते हैं, यह सिद्धांत अधिक वैज्ञानिक होने के कारण पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद के अलावा आचार्य भट्टलोल्लट का उत्पतिवाद(आरोपवाद), आचार्य शंकुक का अनुमितिवाद (अनुमानवाद) और आचार्य भट्टनायक का भुक्तिवाद भी उल्लेखनीय सिद्धांत है। भारतीय काव्यशास्त्र में साधारणीकरण के सिद्धांत का जन्मदाता आचार्य भट्टनायक को माना जाता है। रसों की संख्या नौ होती है। ये रस मनुष्य के हृदय में सदैव विद्यमान रहते हैं। उचित मौका पाकर ये जाग उठते हैं। किस घटना पर व्यक्ति के हृदय में कौन सा रस जागेगा, यह व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि पर भी निर्भर करता है। किसी व्यक्ति की

गोली मारकर हत्या होते देख जहां एक भारतीय के हृदय में करुण रस जागेगा, वहीं एक तालिबानी के हृदय में वीर रस जागेगा। रसोत्पति में सामाजिक पृष्ठभूमि के साथ – साथ कवि के अभिव्यक्ति कौशल का भी विशेष महत्व होता है। अलग – अलग भाषाओं में अलग – अलग प्रतीक और बिंब होते हैं। अलंकारों, प्रतीकों और बिंबों का सही प्रयोग करके ही कवि सहृदय के हृदय में वांछित रसों को जगा सकता है। रसों के जागने पर ही सहृदय को कविता के मर्म का ज्ञान होता है। रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी कविताओं में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिन्हें सुनकर आज भी युवाओं की नसों में खून उबाल भर उठता है।शब्दों के सुंदर और चमत्कारपूर्ण प्रयोग का उद्देश्य सहृदय के हृदय में रसों को जगाना ही है। आचार्य आनंदवर्धन कहते हैं कि कोई ऐसी वस्तु नहीं जो रस का अंग भाव प्राप्त नहीं करती। उनके अनुसार – □रसादि चित्तवृत्तियां विशेष ही हैं और कोई ऐसी चित्तवृत्ति वस्तु नहीं जो चित्तवृत्तियों को उत्पन्न किए बगैर काव्य का विषय बन जाए। अतः कोई ऐसा काव्य प्रकार भी संभव नहीं जिसमें रस किसी न किसी रूप में विद्यमान न हो। इसके लिए कवि का रागी होना आवश्यक है क्योंकि वह रागी हुए बिना किसी भी चित्तवृत्ति को उत्पन्न करने वाली वस्तु का चयन नहीं कर सकता।

काव्य के लक्षणों पर विचार करने वाले पहले आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य को ही साहित्य या काव्य भी माना गया है। राजशेखर ने नाट्यशास्त्र को 'पंचम वेद' की संज्ञा दी है। आचार्य भरतमुनि के बाद प्रथम आचार्य भामह ही हैं। □शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्□ इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध काव्य परिभाषा है। संस्कृत साहित्यशास्त्र प्रणेताओं में आचार्य भामह का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके द्वारा प्रणीत 'काव्यालंकार' साहित्यशास्त्र का प्रथम उपलब्ध ग्रंथ है। जिसमें साहित्यशास्त्र एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में दिखाई पड़ता है। काव्यशास्त्रीय मान्यताओं में काव्य के शरीर के निर्माण से लेकर उसकी आत्मा तक का विचार किया गया है। काव्यशास्त्र के आचार्यों की दृष्टि से भारतीय दर्शन की भांति आत्म तत्व का चिंतन प्रधान रहा है। मनुष्य की भांति ही काव्य के भी शरीर की कल्पना की गई जिसमें पद-रचना, वाक्य रचना से लेकर छंद – रचना तक की यात्रा में काव्य के शरीर का संवर्धन किया गया।किंतु केवल शरीर से सृष्टि में किसी भी वस्तु का संचालन नहीं हो सकता जब तक उसमें शक्ति का सूत्रपात न हो। वही शक्ति प्राणशक्ति है, उसी में आत्मशक्ति का विचार किया जाता है। रीति संप्रदाय के प्रतिपादक आचार्य वामन हैं, इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है – 'रीतिरात्मा काव्यस्य' । रचना में यह विशेषता गुणों के कारण उत्पन्न होती है। रीति के प्रवर्तक वामन ही वह आचार्य हैं जिन्होंने मुखर होकर काव्य में गुण एवं अलंकार को अलग – अलग प्रतिपादित किया। इन्होंने अपने ग्रंथ काव्यालंकार सूत्र में कहा कि – □काव्याशोभायाः कर्ताशे धर्माः गुणाः।

तदतिशय हेतवस्त्वलंकाराः।।□

कुंतक का वक्रोक्ति सिद्धांत व्यापक और समन्वयशील सिद्धांत है। इसकी उद्भावना के मूल में अलंकार सिद्धांत की परंपरा के साथ ध्वनि सिद्धांत है। उनके सिद्धांत में बल भले ही कला पक्ष पर हो पर उनकी व्याख्या के अंतर्गत वस्तु पक्ष तथा भाव पक्ष का पूरा समाहार है। ध्वनि सिद्धांतकार आचार्य आनंदवर्धन ने जहां काव्य में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से अधिक रमणीय और चमत्कार पूर्ण अर्थ व्यंजित हो, वहां ध्वनि की सत्ता मानी है। 'ध्वनि' शब्द की ही नहीं होती अपितु ध्वनि लोक में पद तथा अर्थ की प्रतीति कराने वाला तत्व है। आनंदवर्धन ने अपनी

रचना 'ध्वन्यालोक' के माध्यम से ध्वनि संप्रदाय का प्रतिपादन किया है। आचार्य क्षेमेंद्र ने माना कि रस सिद्ध काव्य की स्थिरता औचित्य तत्व पर निर्भर करती है। अतः औचित्य ही प्राण है। जब शरीर में प्राण है तभी अलंकार आदि की शोभा होगी, तभी रस का संचार हो सकता है, किंतु प्राणों से रहित होने पर कोई भी विशेषता नहीं रह जाती है।किंतु केवल शरीर से सृष्टि में किसी भी वस्तु का संचालन नहीं हो सकता जब तक उसमें शक्ति का सूत्रपात न हो। वही शक्ति प्राणशक्ति है, उसी में आत्मशक्ति का विचार किया जाता है। रीति संप्रदाय के प्रतिपादक आचार्य वामन हैं, इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है – 'रीतिरात्मा काव्यस्य' । रचना में यह विशेषता गुणों के कारण उत्पन्न होती है। रीति के प्रवर्तक वामन ही वह आचार्य हैं जिन्होंने मुखर होकर काव्य में गुण एवं अलंकार को अलग – अलग प्रतिपादित किया। इन्होंने अपने ग्रंथ काव्यालंकार सूत्र में कहा कि – काव्याशोभायाः कर्ताशे धर्माः गुणाः।

तदतिशय हेतवस्त्वलंकाराः।।

कुंतक का वक्रोक्ति सिद्धांत व्यापक और समन्वयशील सिद्धांत है। इसकी उद्भावना के मूल में अलंकार सिद्धांत की परंपरा के साथ ध्वनि सिद्धांत है। उनके सिद्धांत में बल भले ही कला पक्ष पर हो पर उनकी व्याख्या के अंतर्गत वस्तु पक्ष तथा भाव पक्ष का पूरा समाहार है। ध्वनि सिद्धांतकार आचार्य आनंदवर्धन ने जहां काव्य में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से अधिक रमणीय और चमत्कार पूर्ण अर्थ व्यंजित हो, वहां ध्वनि की सत्ता मानी है। 'ध्वनि' शब्द की ही नहीं होती अपितु ध्वनि लोक में पद तथा अर्थ की प्रतीति कराने वाला तत्व है। आनंदवर्धन ने अपनी रचना 'ध्वन्यालोक' के माध्यम से ध्वनि संप्रदाय का प्रतिपादन किया है। आचार्य क्षेमेंद्र ने माना कि रस सिद्ध काव्य की स्थिरता औचित्य तत्व पर निर्भर करती है। अतः औचित्य ही प्राण है। जब शरीर में प्राण है तभी अलंकार आदि की शोभा होगी, तभी रस का संचार हो सकता है, किंतु प्राणों से रहित होने पर कोई भी विशेषता नहीं रह जाती है।शुक्लजी के अनुसार रस दशा में अपनी पृथक् सत्ता की भावना का परिहार हो जाता है। रस व्यक्ति के योगक्षेम (स्वार्थ से रहित) की भावना से विरहित मुक्त हृदय की अनुभूति बन जाती है, उसका आलंबन सर्वसाधारण का आलंबन बन जाता है। यह अनुभूति जगत में भी होती है। अतः काव्य और जगत की अनुभूति में अंतर नहीं होता है। डॉ नगेंद्र रस को आस्तिकता पर आधारित न मानकर मानव संवेदना पर आधारित मानते हैं। डॉ नगेंद्र रस की अनुभूति आनंद रूप को मानते हैं। जबकि आचार्य शुक्ल इसका विरोध करते हैं। वह रमणीय अर्थ को प्रतिपादित करने वाला वाक्य जो अलंकारों और गुणों से सुशोभित हो और उचित रीति से बोले जाने पर सहृदय के हृदय में रस को जगा सके काव्य कहलाता है। काव्य के सभी उपादानों का उद्देश्य सहृदय के हृदय में रस को जगाना है। अतः हम कह सकते हैं कि रस ही काव्य की आत्मा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

(1) डॉ नगेंद्र – आस्था के चरण

(2) डॉ नगेंद्र – रस सिद्धांत, पृष्ठ संख्या 80

(3) डॉ नगेंद्र – रस सिद्धांत, पृष्ठ संख्या 81

(4) डॉ नगेंद्र – रस सिद्धांत, पृष्ठ संख्या 199

(5) नामवर सिंह – कविता के नए प्रतिमान

(6) राजवंश सहाय हीरा-साहित्यशास्त्र कोष